UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182082

UNIVERSAL
LIBRARY

शाखा : 622, गणेशनगर नं० 2, शकरपुर, दिल्ली-110092

वत्सला

लक्ष्मीनारायण

वत्सला

(संवाद कविता)

संवादक : डॉ० लक्ष्मीनारायण
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय ओपन विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली।

प्रस्तुति एवं परिकल्पना : डॉ० ओमानन्द रू० सारस्वत

मूल्य : तीस रुपये

प्रकाशक **चिन्ता प्रकाशन**
पिलानी-333031 (राजस्थान)

मुद्रक : तरुण प्रिंटर्स, दिल्ली-32

VATSALA (Dialogue Poetry)
by Dr. Lakshminarayan Rs. 30.00

परात्पर ज्योतिपुरुष
साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण की
सम्बन्धहीनता विषयक समाधि चेतना का
यह आकाशीय संवाद
आकाशपुरुष स्वामी श्री श्याम की
दिव्यता संवेदना के प्रति
सादर निवेदित

प्रस्तुति

आज मैं जिस रचना और रचनाकार को इस कृति के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा हूँ, यह प्रस्तुति मानवीय चिन्ता तथा कविता के इतिहास-क्रम में एक घटना के रूप में कालपट पर सदा-सर्वदा के लिए अंकित रहने वाली है।

महाकाल के कराल चक्र मे सब-कुछ लीन होने वाला है। देशगत और कालगत सभी महाशून्य के विवर मे खो जाता है। बस, बच रहते है कुछ चेतना-स्फुल्लिग, जो अग्निबीज बनते है और मानवीय अस्तित्व के प्रत्येक सन्दर्भ को आलोकमण्डित करते हैं।

महाविष्णु के परमविग्रह आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र साक्षात् परम ब्रह्म है। मानवीय चिन्तन के परमोच्च सीमान्त, निरपेक्ष आनन्द भूमि के अधिष्ठाता और समाधि-चेतना के अन्तिम मानविन्दु वही वासुदेव है, जिन्होंने मानव-अहं निर्मित कारागार मे दैवी-चेतना देवकी के गर्भ से जन्म लिया था।

प्रभु के जन्म और कार्य दिव्य है। इसलिए जन्म से पूर्व ही एक स्थानान्तरण का विधान किया योगेश्वर ने। स्थानान्तरण योगमाया का। रोहिणी और यशोदा के गर्भ का और देवकी के परम महोत्सव का।

मधुपुरी मे जन्म यानी आनन्द-भूमि मे जन्म होता है प्रभु का। फिर गए गोकुल और बन गए यशोदा के पुत्र जिसने उन्हें बिना प्रसवपीड़ा के सोते हुए में पाया था। जन्म और नामकरण-संस्कार के साथ ही प्रारम्भ हुआ दैवी-भौतिकी-मानसिक आपदाओ का अन्तहीन नाटक। इसी नाटक का एक अंक पूरा हुआ फिर से उनके मधुपुरी लौटने पर। गोकुल छूट गया। गोकुल से मथुरा, मथुरा से द्वारावती, द्वारावती से कुरुक्षेत्र के महासमर का प्रणयन और फिर पुराणपुरुष का प्रभास क्षेत्र गमन, जहाँ महासागर आज भी उनके चरणपखारता है। समुद्रो,

महासमुद्रों मे घिरे वे परम निरपेक्ष अनन्तशायी शेषशायी आनन्दधाम।

उन्ही आनन्दधाम विज्ञानकोष परम विष्णु की लीला का प्रथम सोपान है यह संवाद कविता। हिन्दी-कविता के प्रसंग मे बात करूँ तो इस कविता द्वारा कविता की एक अगली विधा का सूत्रपात हो रहा है, जिसे हम 'संवाद कविता' कह सकते है, शायद लम्बी कविता से आगे की दिशा में प्रस्थान। सो, यह एक प्रस्थान बिन्दु।

वैसे इस कविता और इसके कवि को अभी इस देश और काल में समझा नही जाएगा। शायद भवभूति और वाल्मीकि से भी अधिक प्रतीक्षा करनी पड़े इसके रचनाकार को। मैं अपनी इन पंक्तियों को लिखते समय पूर्ण सजग हूँ और इस आधिकारिक सजगता के साथ ही ऊर्ध्वबाहु होकर यह घोषणा कर रहा हूँ कि इसके साथ ऐसी कविता की शुरूआत हो रही है जिस पर कविता-वाङ्मय को गर्व होगा। मुझे अपने युग मे इस रचनाकार के समान कोई रचनाकार नही मिल रहा। वेदव्यास, वाल्मीकि और तुलसी से छोटा कोई नाम नही मिलता, फिर भी निराला और मुक्तिबोध दोनो मिलकर एक हो जाएँ तो शायद एक लक्ष्मीनारायण बनता है। वह भी इस शर्त के साथ कि दिशा निराला की ऊर्ध्वमयी उदात्तता की हो और सृजन-भूमि मुक्तिबोध की त्वरितकालयात्रिकता की। भाषा इन दोनों से परम भागवती चेतना से स्पर्शित शायद नरेश मेहता की वैष्णव शब्दावली। किन्तु वह भी अपनी पूर्ण पावनता के साथ।

मैं समझ रहा हूँ भारतीय भाषाओं और विशेषतः हिन्दी के स्थापित मठाधीशों की इन पंक्तियों को पढकर क्या हालत हो रही होगी, उनकी फूहड़ शिविरबद्धता और दुरवस्था मेरा विषय नही। मेरा तो एकमात्र प्रतिपाद्य है मानव-जीवन के एक महत्तम के स्पर्श से कोटि-कोटि जनों की भीड़ मे किसी एक विरल वैष्णवजन को एक परम दिव्य वैष्णव पुलक से पुलकित करना।

उसी वैष्णव पुलक सिहरन के साथ मुझे प्रतीक्षा रहेगी वत्सला के बाद मथुरा और मथुरा के बाद शायद द्वारा और कारा की; और प्रभास तो है ही आनन्दलोक का महासागरीय प्रसार।

—डॉ० ओमानन्द रू० सारस्वत

वत्सला

संवादित : श्रीनन्द और श्रीयशोदा

श्रीयशोदा : सुना है आपने
हमारा बेटा मथुरा का राजा हो गया
मेरा बेटा राजा हो गया।

श्रीनंद : और यह नहीं सुना तुमने
कि वह तुम्हारा बेटा नहीं है
हमारा बेटा नहीं है।

भला हमारा बेटा कहीं राजा हो सकता है ?
राजा धरती की कोख से जन्म नहीं लेते
आकाश से उतरते हैं।
आकाश से उतरते हैं
अपनी आकाशीयता के कारण
धरती पर बरसते हैं।

और धरती समझती है
कि उसका अपना पानी
उसके अतल गर्भ का पानी
उस पर बरसा है।

श्रीयशोदा : ठीक कहते हैं आप
किन्तु वह धरती बंजर होती है
जो उस पानी को कहीं से
किसी आकाश से बरसता देखती है।

किन्तु मैं वह धरती नहीं
मैं वानस्पतिक धरती हूँ।

आज जो कुछ वह बना है
मेरी गंधवीणा की झंकार का प्रसार है
वह मेरे यौवन का जल है
मेरे सुहाग की अचलता है
मेरी गोदी का हरिणशावक है।

श्रीनंद . और तुम नहीं जानती
कि तुम्हारा वह हरिणशावक तुम्हारी गोदी में नहीं
एक रत्नजटित सिंहासन पर बैठा है।

श्रीयशोदा : और तुम यह नहीं जानते
कि राजा होने के बाद भी
उसने अपने मस्तक पर राजमुकुट नहीं
बल्कि वही मोरपंख धारण किया है !

मेरे लाडले के सिर पर सजा वह मोरपंख
इस मिट्टी से जन्मा है
उसके रंग किसी स्वर्ग से नहीं बिखरे
इस धरती से फूटे हैं।

श्रीनंद : कितनी भोली है तुम्हारी यह धरती
नहीं जानती तुम
नहीं समझ पाई अब भी
कि इस धरती से उस मोरपंख के रंग फूटते
तो अक्रूर के रथ की लीकों को
अपने आँसुओं के जल से पखारती
ममता सलिला को लाँघकर
वह उसके गोकुल को छोड़कर
कभी न जाता।

श्रीयशोदा : बस निरे पुरुष ही रहे आप !
पुरुष और अधिक से अधिक पिता !
माँ और बेटे के सम्बन्धों को
कैसे माप सकते।
आपने मेरे उस नीलशावक की
अतल साँवली छायाओं में नहीं झाँका।

कभी झाँककर नहीं देखा कि
विदा के क्षणों में
उन नीलकमल कटोरों में
कितना पानी भर आया था
और उस खारे पानी की एक-एक बूँद को
मेरे कन्हैया ने
अपनी आँखों के आकाश में पी लिया था।

कैसे देख पाते आप उस जल को
जो आकाश में घुमड़कर
किसी धरती पर बरसे बिना
आकाश में ही सूख गया था।

श्रीनंद : कैसी है तुम्हारी ममता
तुम्हारी धरती की ममता
कि जिस आकाश का जल
उस आकाश में ही सूख गया
उस सूख गए जल की बंजर नदी बन
उसकी हरितिमा की प्रतीक्षा कर रही है।

श्रीयशोदा : उस हरितिमा की प्रतीक्षा
मेरी ममता नहीं
तुम्हारी बौद्धिक सीमा है
तुम्हारी दृष्टि सम्बन्धों की मात्र
उसी सूखी पर्त तक जाती है
जो भीतर की सारी आर्द्रता का
आवरण होती है ।
सम्बन्धों की सुरक्षा होती है।

श्रीनंद : सम्बन्धों की सुरक्षा
मेरी सीमित दृष्टि की रूक्षता
और उस पर्त के खुरदरेपर से
कहीं अधिक भयावह है नंदमहरि !

तुम नहीं जानती यशोमती !
कि मानवीय सम्बन्धों की यह हरियाली भयावहता
बड़ी सुनसान और अँधेरी सुरंग है ।
ऐसी अँधेरी सुरंग जो आगे किसी उजाले पर तो क्या
किसी अँधेरे की सिम्त पर भी खत्म नहीं होती ।

सम्बन्धों की इस सुरंग में
प्रत्येक यशोदा अकेली चलती है ।
अकेली चलती है
मन के हाथों से अँधेरे को टटोलती हुई ।
ऐसे अँधेरे जिनमें हज़ारों-लाखों साल रहने पर भी
आँखें उनकी अभ्यस्त नहीं होतीं ।

श्रीयशोदा : इस समय मेरी आँखों का वह अँधेरा
तुम्हारा यह मिथ्या का दर्शन है प्राण !

मैं तुम्हें नहीं जानती क्या,
नहीं समझती क्या ?
कि यह दर्शन तुम्हारी ममता का मान है।
भला बेटे से कोई पिता भी मान कर बैठता है ?

मुझसे कैसे छिपा सकोगे अपने पुरुषत्व को
राजा बनकर बेटे ने याद नहीं किया ?
हम दोनों को मथुरा के राजसेवक
आदर से लिवाने नहीं आए ?
यही मान है न तुम्हारा।

भला सोचो तो
तुम्हारा यह छोटा-सा गाँव—
इस गाँव की व्यवस्था के कारण
तुम मेरी ममता को नहीं जान पाए।
वह हमारा नन्हा कान्ह
राज-भार से दबा हुआ
तुम्हारे मान को कैसे जान पाएगा ?

श्रीनंद : मेरी सम्बन्धहीनता की स्थित को
तुम्हारे द्वारा मान समझ लेना
और उसी के आधार पर मेरी व्याख्या करना
एक गलत निष्कर्ष की शुरूआत है।

मैं जानता हूँ
कि तुम नहीं जानती
मेरी इसी सम्बन्धहीनता का
कृष्ण के व्यक्तित्व में विकास हुआ है
उसी प्रकार
जैसे मेरे पितामहों की सम्बन्धहीनता का
मुझमें क्रमागत विकास हुआ है।

श्रीयशोदा : कितने भोले हो तुम
उसे अपना बेटा मानने से इन्कार करते हो
और अपनी परम्परा का
उसमें क्रमागत विकास घोषित करते हो।

मैं तुम पर आरोप नहीं लगा रही।
तुम्हारे सम्बन्धों के गणित के आधार पर
तुम्हें तुम्हारा अपना निष्कर्ष
निवेदित मात्र करती हूँ

श्रीनंद : कि मेरी सम्बन्धहीनता
मेरी और मेरी परम्परा का
सबसे बड़ा व्यामोह है।
ऐसा व्यामोह
जिसे तुम कभी मेरे मान
और कभी मेरी व्यवस्था का नाम देती हो ?

श्रीयशोदा : और कभी कृष्ण के राज्यभार का नाम—
कैसी है तुम्हारे इस संसार की रचना
जिसमें प्रत्येक भावना को
किसी-न-किसी व्यवस्था से सम्बद्ध मान लिया जाता है ?
कैसी है तुम्हारी यह व्यवस्था
जो माँ की ममता को भी एक व्यवस्था मानती है।

नंद राजा !
मेरी विवश ममता को
किसी व्यवस्था से जोड़कर
किसलिए एक कलंक का नाम देते हो।

श्रीनंद : नंदरानी !
फिर भावुक हो गई ?

इस भावुकता को सत्य के नश्तर से
एकबारगी काटकर अपने से अलग कर दो।
इस सत्य को धारण कर लो
कि सम्पूर्ण मानवीय भावनाओं का अस्तित्व
एक जैविक व्यवस्था मात्र है
और उससे अधिक कुछ नहीं।

और जो किसी सत्य को
उस सत्य से कुछ कम कुछ अधिक
अथवा उसके कुछ समकक्ष जानता है
वह सत्य नहीं जानता
सत्य नहीं जीता
मोह को जानता
और मोह को ही जीता है।

श्रीयशोदा : और उसी स्वायत्त सत्य को
तुम अपनी सम्बन्धहीनता
तथा मेरी अवश ममता के माध्यम से
मोह का नाम देकर
मुझ तक प्रेषित करना चाहते हो ?
अपनी सम्बन्धहीनता के प्रति
तुम्हारी यह दुर्निवाद पक्षधरता
क्या तुम्हारा मोह, तुम्हारी ममता
और
तुम्हारा द्वैतभाव नहीं है प्रिय ?

स्वयं को निस्संग
और सामने वाले को आसंग समझना
क्या द्वैतदग्धता में प्रमाण नहीं है ?

श्रीनंद : तुमने भी वही किया न
जो मैंने किया
मेरे उस व्रण को कुरेद ही दिया
जिसे अपनी निस्संगभाव की त्वचा बनाकर
अन्तर्मुख कर दिया था मैंने ।
आज उसे अपना मोह
और मेरी द्वैतदग्धता का नाम देकर
उस ज्वालामुखी का विस्फोट कर दिया ।

अब मैं सम्बन्धहीनता का ज्वालामुखी
द्वैत का विस्फोटक व्रण बनकर
जीवन की शेष यात्रा में
विस्फोटित होता हुआ
प्रतिक्षण रिसता रहूँगा भामिनी !

श्रीयशोदा · और अब तक मेरे कारण
मेरी नार्योचित दुर्बलता के कारण
इस सब-कुछ को
मात्र अपने तक ही धारण करने के मोह से
ग्रसित थे तुम !
नारी को अबला मानकर
उसे मात्र भावराज्य तक सीमित कर लेना
पुरुष समाज की सबसे बड़ी व्यवस्था है ।

और यह सबसे बड़ी व्यवस्था
पुरुष की सबसे बड़ी सुविधा
मनुष्यता का सबसे छोटापन
मानव इतिहास की सबसे बड़ी असंगति है ।

पुरुष को पौरुष तथा नारी को दुर्बल कहकर
उसे भावना, अर्चना और पूजा की वस्तु बना देना
इस दुनिया की व्यवस्था का सबसे बड़ा षड्यंत्र है ।

व्यवस्था तथा षड्यंत्र के पाटों बीच
नारी का जीवन-यौवन तो पिसता रहा ही
पुरुष का अस्तित्व भी नपुंसक हो गया ।

श्रीनंद : अपने नपुंसक अस्तित्व प्रासादों का निर्माण
वह नारी अस्तित्व की नींवों पर करता है
फिर वह चाहे वह
दशों दिशा-इन्द्रियों का स्वामी दशरथ हो
और चाहे उसका आत्मज दाशरथि ?

और चाहे उसे कृष्ण कह लो
और चाहे नन्द।

बस सबके सब सदा एक रथ
और एक उस रथ की यात्रा का विधान करते हैं।
रथ चाहे दाशरथि की वन यात्रा का हो
चाहे राजा श्रीराम की प्रिया धरणीसुता की
निर्वासन यात्रा का
चाहे गोपांगना-इन्द्रियरूपा वृषभानुजा के प्रिय का
और चाहे यह मेरी आसन्न यात्रा के लिए तैयार रथ।

जिसे हम कभी मोह, कभी व्यवस्था
और कभी विवशता का नाम देते है।

इन सब यात्रारथों की धुरियों के बाहरी सिरों पर
(धुरी और गतिकेन्द्र को जोड़ने वाले)
लोहे की कीलों के स्थान पर
कमनीय रूपांगनाओं की अंगुलियाँ जड़ी हैं।

अंगुली विजड़ित रथों पर बैठकर
लड़े तथा जीते गए असंख्य देवासुर संग्रामों की कथा
उन अंगुलियों से निरन्तर रिसते
अग्निरक्त अक्षरों से लिखी जाती हैं
और जब अपनी अस्मिता की प्रतीक्षा में
उन अग्निरक्त अक्षरों के अर्थ उघड़ते हैं
तो नारी को वैधव्य का वरदान मिलता है।
वैधव्य का ऐसा वरदान
जो अनुताप और कलंक के दारुण श्यामपट पर
लिखा जाता है।

श्रीयशोदा : पुत्र के अभिषेक की मांगलिक वेला में
कलंक, अनुताप और वैधव्य की बातें
संगत प्रतीत नहीं होती नाथ !
यह तो इतिहासों की बातें हैं।
यह तो पुराणकथाएँ हैं।

श्रीनंद : जो अयाचित प्रतीत हो
उसे इतिहास या पुराण कह देना
उस उपस्थित अयाचित को नकारना है।
इतिहास कभी बीतता नहीं
वह सार्वभौम है
सार्वभौम है मनुष्य का अस्तित्व
पुराण प्रतिक्षण
प्रत्येक मानव में घटित संभाव्य है
पुराण सार्वकालिक संभवता है।
बस हम अपनी याचितता-अयाचितता बोध के कारण
उस सार्वभौम सार्वकालिक अस्तित्व संभवता का
वरण नहीं कर पाते।

श्रीयशोदा : ऐसी बात है तो
यौवन की देहरी के इस पार खड़ी
इस अभागी जननी का समाधान हो
कि उस सार्वभौम सार्वकालिक अस्तित्व संभवता में
क्या इसके अभिशप्त मातृत्व का भी
कोई सन्दर्भ है ?

श्रीनंद : उस संदर्भ की बात
बाद में हो सकेगी यशोदा
क्योंकि जब तक अपने मोह के कारण
तुम स्वयं को
अभागी और अभिशप्त मानोगी
तब तक
उस सन्दर्भ का स्पर्श नहीं कर सकोगी।

श्रीयशोदा : तो मैं मोह से मुक्त होने को
तत्पर हूँ स्वामी !

श्रीनंद : यह तत्परता उस भूमि के निमित्त पर्याप्त नहीं
फिर भी उसकी दिशा तो है।

उसकी दिशा
जो देश-दिशा और समयातीत है
और हमारी स्थिति
पहले देश में है
फिर दिशा में
और फिर समय में।

मैं और तुम दोनों इस क्षण
देश को लाँघकर उसकी एक
दिशा में अवस्थित हैं
जिस देश की प्रत्येक दिशा में
एक दिशा है, एक कोण है
अनेक दिशाएँ हैं, अनेक कोण हैं
उन सब दिशाओं, उन सब कोणों
उन सारी दिशाओं के उन सारे कोणों को
भेदित करते हुए समय के सूत्र को पकड़ना है।

और समय का सूत्र
हमारे इस देशदिशागत अस्तित्व का सूत्र है

श्रीयशोदा : और मेरे अस्तित्व का सूत्र है
मेरी देह की धरती से
उस कृष्ण पुष्प की कृष्णता गंध का फूटना।

उस कृष्णता गंध का
जिसके प्राथमिक प्रस्फुटन सन्दर्भ में ही
मुझे नींद आ गई थी।

और उस निद्रावस्था में ही
मेरी देह उसके अवतरण का निमित्त वनी थी।

और कौन माँ ऐसी भाग्यभरी होगी
जिसकी कोख ने कृष्णरत्न जन्मा हो
और वह भी बिना प्रसव-वेदना के।

तुम्हें याद है न !
तुम्हीं ने तो मुझे सोते से जगाया था
और मेरी तब तक की बंजर धरती से
पुत्रलाभ का संवाद किया था ?

श्रीनंद : और मैं ही अब संवादित हूँ तुम्हा रे प्रति
कि उसे तुमने जन्म नहीं दिया

श्रीयशोदा : क्योंकि देवकी ऐसा कहती है
वसुदेव ऐसा मानते हैं
और मधुपुरी के लोग ऐसा मानते हैं !

श्रीनंद : इतना ही नहीं
कारागार के मूक पत्थर
देवकी और वसुदेव की हथकड़ियों, बेड़ियों के व्रण
कारागार की उस अँधेरी रात के साक्षी
उस साक्षी क्षण में शयित तथा जागृत
द्वार के राजप्रहरी
और राजमार्ग के श्वान।

और उस रात समुद्रों का ज्वारभाटा बनी यमुना
यमुना की साँवली लहरें
उन लहरों में झिलमिलाते असंख्य नील ज्योतिबिम्ब
उस स्थानान्तरण की कथा कहते हैं।

श्रीयशोदा : और उस संवाद की कथा
क्या कथा नहीं है नाथ
जो संवाद-पुत्र महोत्सव क्षण में
तुमने इस माँ से स्थापित किया था ?

उसके बाद इस वत्सला धेनु के स्तनों में
जो दूध उतर आया था
और उस दूध की पहली बूँद का
जो संवाद उस सद्यजन्मा शिशु के
रक्तनील ज्योतिसम अधरपल्लवों से हुआ था
क्या वह संवाद झूठा था ?

और इस समय देखो
मेरे वाएँ और दाएँ दोनों हाथों पर
यह जो रक्त की लकीरें छलछला आई हैं···
क्योंकि इन्हीं-इन्हीं हाथों ने
उस कोमल किसलय देह पर
कंटकित छड़ी से प्रहार किया था।

और इन्हीं हाथों ने
अपने पाणि-पल्लवों से
अपने कपोलतलों पर वहते ओस-बिन्दुओं को
पोंछते मृणाल हाथों को
खुरदरी रस्सी से बाँधा था—
क्या पश्चाताप की इन लकीरों का संवाद
भी झूठा है नाथ ?

श्रीनंद : बस पहुँच गई न तुम
दूध और रक्त की बात पर।
माँ हो न !
तुम्हारी बात दूध से शुरू होगी
और रक्त पर समाप्त हो जाएगी।

तुम्हें बुरा लगेगा यह जानना
कि दूध भी एक व्यवसाय है
और रक्त भी एक व्यावसायिक व्यवस्था है।

श्रीयशोदा : कितने निर्मम हो तुम
जो जननी के पावन पय
और उसके हाथों पर खिंची पुत्र के रक्त की लकीरों को
किसी व्यवसाय
किसी व्यावसायिक व्यवस्था से जोड़ देते हो ।

श्रीनंद : क्योंकि तुम्हारा वह बेटा
अब एक व्यवस्थापक है
कोई दूध पीता जातक नहीं ।

और यह लकीरें
तुम्हारे उस दूध की हैं
जो तुम्हारी देह में शेष रह गया है ।

यह रक्त तुम्हारे उस अनुताप का रंग है
जो उसके अपने रक्त के रंग से
मेल नहीं खाता था ।

उसके लिए अनावश्यक था
और तुम्हारे लिए ज़रूरी था ।

श्रीयशोदा : और ऐसा न होता तो ?

श्रीनंद : तो तुम्हारी धरती बंजर कहलाती
तुम अवानस्पतिक होती
जड़ और पत्थर होती
ऐसी पाथरी शिला होती
कि जन्मों तक पड़ी रहने पर भी
किसी राम की चरणरज
तुम तक उड़ कर
कभी भी पहुँच न पाती ।

श्रीयशोदा : लेकिन ऐसी अभागिन तो नहीं थी मैं ?

श्रीनंद : किन्तु वैसी अभागी तो मानती हो
जिसका बेटा उसकी गोद से एकाएक उछल
एक राज सिंहासन पर बैठ गया है
और उसे भूल गया है।

श्रीयशोदा : यह भूल उसकी नहीं
एक पुरुष की
दूसरे पुरुष के प्रति
एक सहज ईर्ष्या है।

इस समय तुम पिता नहीं हो
क्योंकि उसे पुत्र नहीं मानते
मधुवन का राजा मानते हो।

उसे राजा मानते हो तो
स्वयं गोकुलपति हो जाते हो
और तुम्हारा सम्बन्ध
एक राजा तथा एक ग्रामप्रमुख का हो जाता है।

श्रीनंद : ऐसा हो सकता था यशोदा
यदि मेरी ग्रामप्रमुखता का
उसकी मधुवन व्यवस्था से
कोई ऐसा सम्बन्ध होता,
जिसमें एक व्यवस्था से
दूसरी व्यवस्था का टकराना सम्भव होता ।

वह संभावना तो
कंस की मृत्यु के साथ
सदा-सदा के लिए समाप्त हो गई ।

श्रीयशोदा : लेकिन संभावना तो
एक अस्तित्व संभाव्यता है न ?
जो आज नहीं है
कल हो सकती है।

सम्भाव्यता एक स्थिति है
आज तुम्हारे और कृष्ण के प्रसंग में
अप्रासंगिक है
किसी आने वाले कल में
प्रासंगिक हो सकती है।

श्रीनंद : यह एक असंभाव्य कल्पना है नंदभामिनी !

श्रीयशोदा : कंस ने जो कुछ देवकी वसुदेव
और उसके सात शिशुओं के साथ किया
वह भी तो एक असंभाव्यता थी।

कितना चाहता था देवकी को उसका भाई कंस।

याद है न तुम्हें
देवकी-वसुदेव के विवाह का वह मण्डप
जिसमें अपने उपहारों के साथ
तुम और मैं भी उपस्थित हुए थे।

मेरी आँखों के सामने
मंत्राभिषिक्त अग्नि की भाँवरे लेती
वसुदेव अनुगता मांगलिक वस्त्राभरणों से सज्जित
सिर से पैर तक सुरंगमा बनी
देवकी की छवि तैर जाती है।

याद है न तुम्हें भी
किस तरह उसके काँपते चरण-विहग
भाई कंस द्वारा सहारा देने पर
आश्वस्त और मंथर हो गए थे
जैसे भाई के हाथों का सहारा
उन विहग शावकों का आश्वस्ति-नीड़ था।

और उन्हीं स्वस्तिकांकित हाथों ने
उसी बहन के सद्यजन्मा शिशुओं को
वज्रोपम कठोर शिलाओं पर पटका था।

वह सब-कुछ
क्या एक असंभाव्यता नहीं थी नाथ ?

श्रीनंद : उस असंभाव्यता का कारण
कंस का अपना मृत्युभय था जमुदा !
अदृष्ट के उस भय से आक्रान्त
उसका संतुलन बिगड़ गया था
वह पगला गया था
नृशंस अमानवीय हो गया था ।

श्रीयशोदा : और आज तुम मेरे प्रति
मेरे उस अबोध आत्मज के प्रति
जो ऐसी निर्ममता का आरोप कर रहे हो
यह आरोपण
अमानवीयता नहीं है क्या ?

एक प्राप्त अमानवीयता
दूसरी संभव अमानवीयता को निमंत्रण दे जाए
यह कुछ असंभव तो नहीं
यद्यपि मैं इसे असंभव मानती हूँ।

श्रीनंद : तथापि अपने और कृष्ण के प्रसंग में
उस सब-कुछ को असम्भव मानती हो
जो गोकुल तथा मथुरा के अन्तराल में
घटित हो चुका है
घटित होकर इतिहास हो चुका है

उस इतिहास में
स्वयं को मत खोजो यशोदा
क्योंकि इस खोज में जो कुछ तुम्हें मिलेगा
उसे तुम्हारी धरती धारण नहीं कर पाएगी !

मैं जानता हूँ
तुम नहीं जानती
तुम्हारी जिस धरती ने कृष्णगंध को धारण किया
वह धरती
उसकी इतिहास कृष्णता को धारण नहीं कर सकेगी।
बिखर जाएगी
ऐसी दरारें पड़ जाएँगी उस धरती पर
कि किसी नन्द की नन्दिता दर्शन भस्म
उन दरारों को नहीं भर पाएगी।

मैं सम्बन्धों के सारे आवरणों को
एकबारगी भस्म कर तुम्हारे सम्मुख
भस्म रूप में विद्यमान हूँ
इस भस्म को अभी शिरोधार्य कर लो यशोदा
समय बीत जाने पर
यह भस्म तुम्हारे मोहभंग की दरारों वाली धरती का
आलेपन नहीं बन सकेगी ।

श्रीयशोदा : तुम्हारी सीमा सम्बन्धों की भस्म है।
और माँ की ममता
भस्मावृत ज्योति का ऐसा तरल स्फुल्लिंग है
जो पिता और पुत्र दोनों की
सम्बन्धहीनता निठुरता को
अपनी तरलता में बहाकर ले जाएगा।

जैसे संवत्सर के सारे कूड़े-कर्कट को
भागीरथी की एक ही बाढ़
अपने साथ बहाकर ले जाती है
और धरती का कोना-कोना
निरभ्र स्वच्छता का पावन मन्दिर बन जाता है।

श्रीनंद : निरभ्रता और पावन मन्दिरता का स्वप्न
फिर तुम्हारे मोह की परिकल्पना है जसुदा !
यह प्रत्येक उस माँ की ममता का हृदय है
जो जागतिक यथार्थ और मानवीय सम्बन्धों
की भीषण परिणतियों के बाद भी
मानव-जीवन के विपम अंधड़ मार्ग में
यात्रा के दूरीसूचक प्रस्तरखण्डों-सा खड़ा रहता है
और जिसे प्रत्येक जननी अपने मोहवश—अज्ञानवश
अपनी ममता का आकुल शिलालेख समझती है।

श्रीयशोदा : ठीक कहते हो तुम
और इसे मानने में झिझकते हो
तुम्हीं बताओ
तुम्हीं न्याय दो मुझे, गोकुल के मुखिया नंद !
क्या कृष्ण जैसे आत्मज
मुझ जैसी दुखियारी माँ की ममता के
मेरे जर्जर यौवन की सार्थकता के
गन्धमादन शिलालेख नहीं हैं ?

श्रीनंद : मुझे निर्णायक बनाकर तुमने
अपने और कृष्ण के सम्बन्धों के कटघरे में
खड़ा कर ही दिया है तो सुनो ब्रजभामिनी !

मेरे न्याय से
तुम्हारा और कृष्ण का सम्बन्ध
एक परम याचित मान्य अतिथि
और एक भावुक परिचारिका का सम्बन्ध मात्र है।

भला न्याय का नियामक मैं
एक परिचारिका मात्र को
मातृत्व का अधिकार कैसे दिला सकता हूँ ?

श्रीयशोदा : यह फिर एक अधिकारी का अधिकार
कृष्णवत्स वियुक्ता वत्सला की वत्सलता का
उपहास करने लगा न ?

मेरा भी अभियोग सुन लो पुरुष न्यायिक !
नारीमन की अमापी अभाव यंत्रणा का माप
एक बौद्धिक पुरुष कैसे पा सकता है ?

तुम्हारी न्याय असंगतता को फिर दुहरा दूँ नंद !
पहले तुम पुरुष हो
फिर गौरवशाली पिता हो
उस पर एक व्यवस्थापक हो
और उस पर भी एक पति हो
सो एक पुरुष, एक पिता, एक व्यवस्थापक और एक पति
पुरुष, पिता, व्यवस्थापक और पति
एक माँ—केवल और केवल माँ
और
केवल और केवल उसके पुत्र के मध्य घटित
अघटित सम्बन्ध-व्यथा को कैसे समझेगा ?

मेरा वह होता तुम्हारी जगह
या तुम ही पुत्र होते अपनी रोती जननी के सम्मुख
तो क्या तब भी
ऐसे दारुण विषभरे व्यंग्य बाणों से
वात्सल्य का आँचल पसारती माँ के
अनबींधे मन को बींधते ?

मेरा कन्हैया होता मेरे सामने
मेरा हलधर बलराम होता मेरे सामने
तो, तो क्या वह कभी भी
किसी काल में
किसी स्थिति में
मुझे अपमानित करते ?

पुत्र-वियोग से तापित माँ को सान्त्वना के दो
शब्द कहने के स्थान पर
उसके सम्बन्धों की अर्थहीनता की घोषणाएँ
करने बैठ जाते ?

श्रीनंद : मैं, सम्बन्धों की अर्थहीनता
सम्बन्धों के उसी अपमान
उसी आत्मरोदन
मानवीय सम्बन्धों के उसी अनुताप
सम्पूर्ण सम्बन्धों की उसी त्रासदी
त्रासदी के चरम त्रासद अनुभव दंशों से तुम्हें
बचाना चाहता था।

किन्तु तुम अपनी नार्योचित आदिम दुर्बलता के कारण
अपनी आँखों को
अपनी हथेलियों पर रखकर देखना चाहती हो।

एक बार फिर आगाह करता हूँ तुम्हें
सम्बन्धों की आँखों को
इन आँखों की सीमाओं में ही बन्द रहने दो।
सम्बन्धों के रक्त-शुभ्र-राजीव कृष्णनयन
नयनगोलकों में ही शोभा पाते हैं
क्योंकि एक बार यह अपनी परिधि से निकल
तुम्हारे हाथों में आ गए
और तुमने इन्हें उलट-पलट कर देख लिया
तो फिर इन आँखों में दृष्टि नहीं रहेगी
इस दृष्टि को मत खोओ प्रिया !

श्रीयशोदा : प्रिया कहते हो
और सम्बन्धों की इन आँखों के सत्य को
मुझे दिखाने से इन्कार करते हो ?

तुम्हारे हिसाब से मेरी यह ज़िद ही सही
लेकिन तुम मेरा भी निर्णय सुन लो नन्द
कि मैं नंदमहरि
ब्रजभामिनी और कृष्ण के मातृत्व का गौरव
धारण करने वाली यशोदा
अपनी आँखों के इस सत्य और तुम्हारे शब्दों में
माँ और बेटे के सम्बन्धों की अर्थहीनता के सत्य को
सदा-सदा के लिए पाना चाहती हूँ।

उस सत्य को धारण करना चाहता हूँ
जिसे आप स्वयं को अवगत घोषित करते हो
किन्तु अपनी इस अर्धांगिनी के लिए
उसी सत्य का अनुभव
त्याज्य घोषित करते हो।

श्रीनंद : मैं नहीं चाहता था कृष्णजननि !
कि तुम अन्त्यज पुत्र की अनुगामिनी बनो
मात्र उसकी सम्बन्धहीनता के प्रमाण की खातिर।

मैं नहीं चाहता था
कि तुम भी वह सब-कुछ धारण करो
जो मेरी निस्संगता का महाभाव है।

मैं निस्संग होकर उसके महाभाव की कथा
तुम्हारे प्रति प्रस्तुत कर सका
तुम तो इतना भी नहीं कर सकोगी।

मैं जानता हूँ
तुम नहीं जानती
लेकिन मेरा जानना
और तुम्हारा न जानना
अब मेरा तर्क नहीं है
मेरा तर्क अब मेरा मथुरा को प्रयाण होगा
और मेरे इस प्रयाणरथ
सम्बन्धों के इस कृष्णोन्मुख प्रयाण रथ की
साक्षी तुम रहोगी यशोदा।

श्रीयशोदा : तर्क का कृष्णोन्मुख यह प्रयाण निर्णय
पहले ही हो जाता
तो मैं तुम्हारे प्रति इतनी निष्ठुर न होती नंदराजा।

तुम जानते हो
कृष्णोन्मुखी दिशा में तुम्हारा यह प्रयाण निर्णय
तुम्हारी इस अनुगता की आँखों के
प्रतीक्षारत पुण्य सलिल से अभिसिंचित है।
इस अनुगता के पुत्र तथा पति के निमित्त
श्वास-प्रश्वास की रेशमी किरणों से बुना
स्वस्तिक पट तुम्हारा मंगलमय आच्छद है।

मंगलवेला में प्रस्थान करें देव !
और हाँ एक अनुनय फिर भी
अपनी सम्बन्धहीनता की कथा
मेरे उसके सामने न बाँचना स्वामी !
वह मेरा बेटा है न !
कोमलमन प्रतनु और किसलयदल
कहीं कुम्हला न जाए ?

बस इतना कहना
मेरी ओर से कहना
राजकाज में व्यस्त हो
अकारण विषण्णमुख हो
अनजाने कुम्हलाया हो
तो मेरी तरह प्यार से दुलार से
आँचल फैलाकर मेरी ओर से
उसे लौटा लाना किसी तरह।

कहना
उसकी माँ बूढ़ी हो गई
उसकी प्रतीक्षा में
जर्जर देह से दही बिलोती है प्रतिदिन
माखन लेकर प्रतीक्षा करती है रोज़
प्रातः से सन्ध्या तक।

कह देना
एक वत्सलहीना परम वृद्धा
गाय है वृन्दावन में
जिसने अब
लता-तृण-गुल्मों के साथ ही
अब लहलहाती दूब को भी
सूँघना बन्द कर दिया है, क्योंकि
वत्सल-मधुरा दूब उसकी
श्याम ज्योतिहीन आँखों में
नयनशूल बनकर चुभती है।

कथासूत्र

नित्य वत्सला धेनु की कथा
निरन्तर छीजते वात्सल्य की अभिशप्त व्यथा है।

यह व्यथा एक माँ है
जो सिद्धि-रथ पर चढ़े बेटे की प्रयाण कथा में
अपना निर्जन अतीत खोजती है
शायद मोहवश भूलती हुई कि
वह प्रसव करती है योगमाया
और चीन्हती है योगेश्वर ?

और योगेश्वर वासुदेव की कथा
मधुवन-वृन्दावन-गोकुल और फिर वृन्दावन
से होती हुई
वसुदेव-देवकी की मधुपुरी में पहुँच जाती है।
बस कथा पहुँचती है, जो अनुगता है
नित्य श्रीकृष्ण की।

नंदराज का रथ पहुँचा जब गन्तव्य तक
तो नित्यप्रभु द्वारिका की ओर जा चुके थे
तब नंद की अभ्यर्थना की एक और नंद ने
जिन्हें वसुदेव कहते हैं।

●●●